KAAV INTERNATIONAL JOURNAL OF ECONOMICS, COMMERCE & BUSINESS MANAGEMENT
A REFEREED BLIND PEER REVIEW QUARTERLY JOURNAL
KIJECBM/ JAN-MAR (2018)/VOL-5/ISS-1/A101 PAGE NO.609-616
ISSN: 2348-4969 IMPACT FACTOR (2017) – 7.8902
UGC APPROVED JOURNAL NO. 47663
WWW.KAAVPUBLICATIONS.ORG

बौद्ध दर्शन

[1]डॉ. संगीता जगताप
[1]कला विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चिखलदरा

सारांश
भारत में दर्शन की एक लम्बी परम्परा है। यहाँ धर्म और दर्शन का गहरा सम्बन्ध हमेशा से रहा है। भारतीय जीवन और धर्म पर दर्शन ने गहरा प्रभाव छोड़ा है। भारतीय दर्शन परंपरा के अधिकांश सम्प्रदाय किसी न किसी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़े रह हैं। कुछ दर्शनों से तो नये धर्मों का अविर्भाव भी हुआ है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शन का सृजन हुआ है। जब मानव ने अपने आप को दुःखों के चक्रव्यूह में घिरा पाया तब उसने पीड़ा और क्लेश से मुक्ति पाने हेतु दर्शन को अपनाया। भारतीय दर्शन की दृष्टि मैं कौन हूँ ? यह संसार क्या है ? हम सबको उत्पन्न करने वाली वह दिव्य शक्ति कौन है ? यहाँ से प्रारम्भ होती है और दर्शन इन प्रश्नों और जिज्ञासाओं के उत्तर खोजने का कार्य अलग–अलग दार्शनिकों तथा दर्शन सम्प्रदायों ने किया। चाहे फिर वह आस्तिक दर्शन हो या नास्तिक, हिन्दू दर्शन हो या अहिन्दू दर्शन। भारतीय चिन्तन के अन्तर्गत अनेक दर्शनों ने अपना स्थान बनाया। चिन्तन की इस सुदीर्घ यात्रा में बौद्ध दर्शन का भी विशेष महत्व है।

भारत में दर्शन की एक लम्बी परम्परा है। यहाँ धर्म और दर्शन का गहरा सम्बन्ध हमेशा से रहा है। भारतीय जीवन और धर्म पर दर्शन ने गहरा प्रभाव छोड़ा है। भारतीय दर्शन परंपरा के अधिकांश सम्प्रदाय किसी न किसी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़े रह हैं। कुछ दर्शनों से तो नये धर्मों का अविर्भाव भी हुआ है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शन का सृजन हुआ है। जब मानव ने अपने आप को दुःखों के चक्रव्यूह में घिरा पाया तब उसने पीड़ा और क्लेश से मुक्ति पाने हेतु दर्शन को अपनाया। भारतीय दर्शन की दृष्टि मैं कौन हूँ ? यह संसार क्या है ? हम सबको उत्पन्न करने वाली वह दिव्य शक्ति कौन है ? यहाँ से प्रारम्भ होती है और दर्शन इन प्रश्नों और जिज्ञासाओं के उत्तर खोजने का कार्य अलग–अलग दार्शनिकों तथा दर्शन सम्प्रदायों ने किया। चाहे फिर वह आस्तिक दर्शन हो या नास्तिक, हिन्दू दर्शन हो या अहिन्दू दर्शन। भारतीय चिन्तन के अन्तर्गत अनेक दर्शनों ने अपना स्थान बनाया। चिन्तन की इस सुदीर्घ यात्रा में बौद्ध दर्शन का भी विशेष महत्व है। हम बौद्ध दर्शन की विचारधारा से अवगत होने के पूर्व दर्शन क्या है ? इसे जानेंगे।

'दर्शन' शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाय'। दर्शन का व्युत्पत्ति–लभ्य अर्थ है ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम''[1]

अर्थात जिसके द्वारा देखा जाए वह दर्शन है। यहाँ दर्शन से अभिप्राय सामान्य देखना नही होगा, वरन नेत्र जैसी किसी इन्द्रिय से परे होकर देखने से होता है। दर्शन के साथ शास्त्र शब्द भी जुड़ा हुआ है। शास्त्र शब्द मुख्यतः दो अर्थों में प्रयोग होता है। शास्त्र शब्द के बार में आगम ग्रन्थों में बताया गया है।

''शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्यभिधीयते''[2]

शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति दो धातुओं से हुई है। 'शास्' अर्थात आज्ञा करना और शंस् – अर्थात प्रकट करना या वर्णन करना। शास्त्र के इन दोनों रूपों से पहले वाला शास्त्र अर्थात शासन करने वाला शास्त्र धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के लिए उपयुक्त है तो दूसरे वाला शास्त्र दर्शन के लिए उपयुक्त है। अतः दर्शन शास्त्र का सीधा सा अर्थ इस प्रकार होगा, जो जीवन और जगत के गूढ़ रहस्यों का वर्णन करे वह दर्शन शास्त्र है। जीवन और जगत की समस्त समस्याओं और रहस्यों की व्याख्या दर्शनशास्त्र करता है। दर्शन की विविध विद्वानों की परिभाषा हम देखेंगे।

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ.सं. 3
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ.सं. 3

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

1. के. दामोदरन के अनुसार –
"मानव चिन्तन अथवा विचारधारा की अन्य किसी भी अभिव्यक्ति की भांति दर्शन भी अंतिम विश्लेषण में जनता के जीवन की सामाजिक तथा आंगिक परिस्थितियों को प्रतिबिम्बित करता है।"[1]

2. डॉत्र राधाकृष्णन –
"दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक (आत्मा का अध्याय) ज्ञान है। जो आत्मा रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है।"[2]

3. प्लेटो के शब्दों में –

"दर्शनशास्त्र का उद्‌देश्य अनन्त तथा वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना है।"[3]
पाश्चात्य देशों में दर्शनशास्त्र का पर्यायवाची फिलासॉफी है। 'फिलासॉफी' दो शब्दां के योग से बना है। फिलॅास + सोफिया, फिलास का अर्थ है प्रेम और सोफिया का अर्थ है ज्ञान। अतः इसका अर्थ हुआ प्रेम या ज्ञान का अनुराग। जो व्यक्ति इसकी साधना में लीन होते थे उन्हें 'फिलासाफर' (विद्यानुरागी) कहा गया जिसे हम भारतीय दृष्टि में दार्शनिक कहते हैं।

बौद्ध दर्शन के चार आर्यसत्य :
भगवान बुद्ध ने अपनी प्रज्ञा और सूक्ष्म विवेक बुद्धी के बल पर चार आर्य सत्यों को प्रस्तुत किया। बुद्ध द्वारा दिए गए सारे उपदेश इन चार आर्य सत्यों में समाहित हो जाते हैं। यह चार आर्य सत्य इस प्रकार है।

1. संसार दुःखों से परिपूर्ण है – अर्थात दुःख
2. दुःखों का कारण भी है – अर्थात दुःख – समुदाय
3. दुःखों का अन्त सम्भव है – अर्थात दुःख निरोध
4. दुःखों के अन्त का मार्ग है – अर्थात दुःख निरोध मार्ग

यह सभी आर्य सत्य बौद्ध धर्म का निचोड़ है। बुद्ध की सारी विचारधारा किसी न किसी स्प में इन चार आर्य सत्यों से प्रभावित रही हैं। इन आर्य सत्यों के सम्बन्ध में 'माज्झिाम निकाय' में कहा गया है कि, "इसी से (चार अर्थ सत्यों से) अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शांति, ज्ञान, प्रजा था निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।"[4] चन्द्रकीर्ति कु कथानुसार इस सत्यों को आर्य कहने का अभिप्राय यह है कि, आर्य (विद्वज्जन) लोग ही इन सत्यों के तह तक पहुँचते हैं, पामरजन जीते हैं, मरते हैं, तथा दुःखमय जगत का अनुभव प्रतिक्षण करने पर भी इन सत्यों तक नहीं पहुँच पाते।[5] इन चारों आर्य सत्यों का संक्षिप्त में विवेचन करेंगे।

1. डॉ. रामनाथ शर्मा, भारतीय दर्शन के मूल तत्व, पृ.सं. 1
2. के. दामोदरन, भारती चिन्तन परम्परा, पृ.सं. 3
3. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, पृ.सं. 38
4. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 107
5. डॉ. बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ.सं. 121–122

1. दुःख – बुद्ध द्वारा कहा गया सर्वप्रथम आर्य सत्य है 'दुःख'। यह सारा संसार दुःखमय है। बुद्ध द्वारा यह निष्कर्ष जीवन की गहन अनुभूतियों पर विश्लेषण परह ही सत्य माना है। जीवन से अनेक प्रकार के दुःख जुड़े हुए है। जैसे– रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिंता, असन्तोष, नैराश्य, शोक इत्यादि। इसको स्पष्ट करने हेतु भगवान बुद्ध का कथन दृष्टव्य है – "जन्म में दुःख है, नाश में दुःख है, रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है, अप्रिय से संयोग दुःखमय है, प्रिय से वियोग दुःखमय है। संक्षेम में रोग से उत्पन्न पंचस्कन्ध दुःखमय है।"[1] बुद्ध ने पंचस्कन्ध के अन्तर्गत शरीर, अनुभूति, प्रत्यक्ष, इच्छा और विचार इन पाँच तत्वों को प्रमुख माना है। कुछ लोगों ने बुद्ध के सारे संसार को दुःखमय कहने का विरोध किया और कहा कि संसार में कुछ सुखमय अनुभूतियाँ होती हैं। इस पर बुद्ध ने अपने विचार इस प्रकार दिये। वे कहते हैं ससार में जिन अनुभूतियों को हम सुखमय समझाते हैं, वे भी दुःखमय ही है। सुखात्मक अुनभूतियों को प्राप्त करने में कष्ट प्राप्त होता है और अगर वह वस्तु मिल भी जाए जो सुखात्मक अनुभूति का प्रतिनिधत्व करती है। तो उसके खो जाने का भय और चिन्ता मनुष्य को हमेशा लगी रहती है। सांसारिक दुःखों को बुद्ध ने इसलिए भी दुःखमय कहा है। क्योंकि वे क्षणिक एवं नाश्वान है।। अतः जो क्षणिक एवं नाश्वान है उसके नष्ट होने के पश्चात् दुःख का ही अविर्भाव होता है। संसार की कुछ अनुभूतियों को सुखात्मक मान भी लिया जाए तो भी कुछ अनुभूतियों जैसे रोग, मृत्यु, मनुष्य को दुःखी बना देती हैं। हर व्यक्ति मृत्यु के विचार से कि मैं कभी न कभी मर जाऊँगा सोचकर दुःखी रहता है – मानव पृथ्वी पर कोई भी ऐसा स्थान नहीं पा सकता जहाँ कि मृत्यु से बचा जा सके। जीवन के हर पहलू में दुःख की विराट परछाई है। मनुष्य को केवल मृत्यु से ही दुःख नहीं मिलता बल्कि संसार में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भी संघर्षरत रहना पड़ता है। अतः जहाँ संघर्ष है वहाँ दुःख हैं ही। इस पर भगवान बुद्ध का कथन प्रस्तुत है – "दुनिया में दुःखियों ने जितने आँसू बहाये हैं उसका पानी महासागर में जितना जल है उससे भी अधिक हैं।"[2] बुद्ध के प्रथम आर्य सत्य को भारत के अधिकांश दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। अपवाद रूप में चार्वाक दर्शन सामने आता है जिससे संसार को दुःखों का भंडार कहा है।

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

2. दुःख – समुदाय – भारतीय दर्शन एवं दार्शनिकों की यह विशेषता रही है कि सभी ने संसार को दुःखमय जाना और इस दुःख के कारणों को खोजने में निरंतर प्रयासरत रहे है।

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 108
2. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 109

गौतम बुद्ध ने भी इस परंपरा का निर्वाह किया है। बुद्ध के दूसरे आर्य सत्य में एक सिद्धान्त के रूप में दुःखों के कारणों को स्पष्ट किया है जिसे 'प्रतीत्यसमुत्पाद' कहा है। पाली भाषा में इस सिद्धांत को 'पटिच्यसमुत्पाद' कहते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद दो शब्दों के योग से बना है–प्रतीत्य और समुत्पाद। प्रातीत्य का अर्थ है 'किसी वस्तु के उपस्थित होने पर' समुत्पाद का अर्थ है – 'किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति'। अतः प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ हुआ – एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। अर्थात एक के आगमन से दूसरे की उत्पत्ति।

प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक विषय या दुःख का कोई न कोई कारण होता है। कोई भी घटना अकारण घटित नहीं होती है। बुद्ध ने दुःख को 'जरामरण' कहा है जरा अर्थात वृद्धावस्था और मरण अर्थात मृत्यु है। 'जरामरण' का कारण बुद्ध ने 'जाति' को बताया है। बार–बार जन्म ग्रहण करना जाति है। यदि मनुष्य शरीर नहीं धारण करता तब उसे सांसारिक दुःखों का सामना नहीं करना पड़ता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जाति का कारण 'भव' है। मानव को जन्म ग्रहण इसलिए लेना पड़ता है कि उसकी प्रवृत्ति बार–बार जन्म ग्रहण करने की होती है। अर्थात जन्म ग्रहण करने की प्रवृत्ति को भव कहते हैं। भव का कारण 'उपादान' है। सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति को उपादान कहते हैं। 'उपादान' का कारण बुद्ध ने 'तृष्णा' को माना है। शब्द, स्पर्श, रंग इत्यादि विषयों के भोग की वासना को तृष्णा कहते हैं। तृष्णा के कारण ही मानव सांसारिक विषयों की ओर अन्धा होकर भागता है। 'तृष्णा' का कारण 'वेदना' है। पूर्व इन्द्रियानुभूति को वेदना कहा जाता है। यदि इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्पर्क नहीं होगा तब इन्द्रियानुभूति अर्थात वेदना का उदय नहीं होगा स्पर्श का कारण बुद्ध ने 'षडायतन' को कहा है। षडायतन का कारण बुद्ध के अनुसार 'नाम–रूप' है। नाम–रूप का कारण इस सिद्धान्त में विज्ञान को बताया गया है। नवजात शिशु माँ के गर्भ में जब रहता है तब विज्ञान के कारण ही शिशु का शरीर एवं मन विकसित होता है। यदि गर्भावस्था के समय विज्ञान न हो तो यह प्रक्रिया न घटित होती। विज्ञान का कारण बुद्ध ने 'संस्कार' को माना है। संस्कार अर्थात व्यवस्थित करना। पूर्व जन्म की प्रवृत्तियों के अनुसार ही संस्कार बनते हैं। संस्कार निर्मिती का कारण 'अविद्या' है। अविद्या अर्थात ज्ञान का अभाव। जो वस्तु अवास्तविक है उसे वास्तविक समझाना, जो वस्तु दुःखमय है उसे सुखमय समझाना, अनात्म को आत्म समझाना अविद्या का रूप है। अविंधा को बुद्ध ने समस्त दुःखों का मूल केन्द्र बिन्दु माना हैं। यह इसलिए की गौतम बुद्ध के दुःखों का चक्र अविद्या पर समाप्त हो जाता है। अविद्या का कारण बुद्ध ने नहीं बताया। यहा पर आकर वे मौन हो जाते हैं। बुद्ध ने अविद्या को दुःखों का कारण मानकर भारतीय दर्शन परम्परा का पालन किया है क्योंकि साँख्य, न्या, वैशेषिक, शंकर और जैन दर्शन में यही कारण बताया गया है।

इस सिद्धान्त को द्वादश – निदान, संसार चक्र, भावचक्र, जन्म–मरण चक्र, धर्म चक्र आदि नामों से संबोधित किया जाता है। ''प्रतीत्यसमुत्पाद'' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस की बारह कड़ियाँ भूत, वर्तमान, और भविष्यत् जीवनों में व्याप्त है।[1]

3. दुःख – निरोध – गौतम बुद्ध द्वारा कहा गया तृतीय आर्य सत्य 'दुःख –निरोध' है जिसे निर्वाण भी कहा जाता है। निर्वाण को पाली भाषा में 'निव्वान' कहा जाता है। बुद्ध ने द्वितीय आर्य सत्य दुःख को माना है अतः यह प्रमाणित होता है कि दुःख के कारणों को नष्ट कर दिया जाए तो दुःख का भी अन्त होगा। भारत के अन्य दर्शनों में जिस प्रकार 'मोक्ष' को माना है बौद्ध धर्म में वही स्थान या संज्ञा निर्वाण की है। निर्वाण को प्राप्त करना इस जीवन में ही संभव है। यदि व्यक्ति अपने अन्दर समाए राग, द्वेष, मोह, आसक्ति, अहंकार, भय पर विजय पा लेता है तो वह मुक्ति पाता है। भगवान बुद्ध को जब बौद्धत्व की प्राप्ति हुई उसके पश्चात वे अकर्मण्य न होकर क्रियाशील हुए और समाज जिस दुःख से त्रस्त था। उसे उन्होंने अपनी निर्वाण रूपी नैया पर सवार कर इस भवसागर से पार कराने का निर्णय लिया। निर्वाण का अर्थ जीवन का अन्त न होकर जीवन काल में ही ऐसी स्थिति को प्राप्त करना है जिसमें अमृतमय आनन्द और चिर शान्ति हो। अब इससे यह भ्रांति हो सकती है कि मनुष्य निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात भी अगर कर्मों के बन्धन में पड़े तो वह कर्म संसार का निर्माण करेंगे और जन्म–मरण का चक्र पुनः आरम्भ हो जाएगा। परन्तु ऐसा नहीं है। बुद्ध ने दो प्रकार के कर्म माने हैं– एक वह कर्म है जो राग, द्वेष और मोह से रहित होता है। इस प्रकार के कर्म को आसवत कार्य कहते हैं जो मानव को बन्धन में बाँधते हैं। दूसरा कर्म वह है जो राग, द्वेष, और मोह से रहित होता है तथा संसार को अनीत्य समझाकर किया जाता है। इससे मनुष्य जन्म–मरण के बन्धन में नही बंधता। बुद्ध निर्वाण के स्वरूप को लेकर सदा मौन ही रहे हैं। उन्होंने प्रश्न पूछने पर भी इसके स्वरूप को लेकर व्याख्या नहीं की। निर्वाण का अर्थ क्या है इसमें भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इसका अर्थ 'शीतलता' से लगाते हैं अतः पहले मत के मानने वाले विद्ववानों के विचारों को 'निषेधात्मक मत' कहते हैं तो दूसरे विद्ववानों के मत को 'भावनात्मक मत'।

''भावनात्मक मत के समर्थकों ने निर्वाण का अर्थ शीतलता लिया है। बौद्ध–दर्शन में वासना, क्रोध, मोह, भ्रम, दुःख इत्यादि को अग्नि के तुल्य माना गया है। निर्वाण का अर्थ वासना एवं दुःख रूपी आग का ठण्डा हो जाना है।''[2]
रायज डेविड्स ने निर्वाण को अभिव्यक्त करते कहा है– ''निर्वाण मन की पापहीन शान्तावस्था के समरूप है जिसे सबसे अच्छी तरह पवित्रता, पूर्ण शान्ति, शिवत्व और प्रज्ञा कहा जा सकता है। निमर्वाण प्राप्ति से मनुष्य को तीन लाभ हैं। 1. निर्वाण से समस्त दुःखों का अन्त हो जाता है और मानव मुक्ति पाता है। 2. निर्वाण से मनुष्य का जन्म–मरण का चक्र छूट जाता है।

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 112
2. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 116
3. तीसरा लाभ यह है कि मनुष्य का सारा जीवन अमृतमय आनन्द में बीतता है।''

दुःख–निरोध–मार्ग

बुद्धध अपने चतुर्थ आर्य सत्य में दुःख निरोध–मार्ग की व्याख्या की है। दुःख निरोध–मार्ग दुःखों के कारणों का अन्त करने का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलकर ही बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। उनके अनुसार दूसरे लोग भी इस मार्ग पर चलकर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं चाहे फिर वे गृहस्थ हों या सन्यासी। दुःख–निरोध–मार्ग को समझाने के लिए बुद्धने आष्टाँगिक मार्ग की चर्चा की है। जिसका संक्षिप्त विवचेन हम करेंगे।

1. सम्यक् दृष्टि : बुद्ध ने दुःख का केन्द्रबिन्दु अविद्या को माना है अविद्या के कारण ही मिथ्या दृष्टि का आविर्भाव होता है। मिथ्या दृष्टि की प्रबलता के कारण अवास्तविक वस्तु को वास्तविक समझने लगते हैं। इसी कारण जो आत्मा नहीं है उसे आत्मा मानते हैं, जो नश्वर संसार है उसे अनश्वर, जो दुःखमय है उसे सुखमय मान बैठते है। अतः मिथ्या दृष्टि का सम्यक् दृष्टि से ही सम्भव है। सम्यक् दृष्टि का अर्थ बुद्ध के चार आर्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त करना।

2. सम्यक् संकल्प : सम्यक् दृष्टि सर्वप्रथम सम्यक् संकल्प से प्राप्त होती है। बुद्ध के चार आर्य सत्यों को अपने जीवन में उतारना ही सम्यक् संकल्प है। सत्य के ज्ञान, एन्द्रिय विषयों से अलग–अलग रहना, द्वेष और हिंसा के विचारों को त्यागना ही सच्चे साधक को निर्वाण तक पहुँचा सकती है।

3. सम्यक् वाक : सम्यक् वाक ही सम्यक् संकल्प की शक्ति है। कोई भी मानव सम्यक् ज्ञान का पालन तभी कर सकता है जब वह निरन्तर प्रिय व सत्य वचन बोले। सत्य वचन के अलावा ऐसे कथन का भी परित्याग व्यक्ति करके जिसके द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचता हो। अतरु कहा गया हे ''मन को शन्त रखने वाला एक शब्द हजार निरर्थक शब्दों से श्रेयस्कर है।''[1]

4. सम्यक् कर्मान्त : सत्य भाषी एवं मधुर वाणी के अलावा मनुष्य को निर्वाण प्राप्त करने के बारे में कर्मों से अपने आप को बचाना है क्योंकि यह पथभ्रष्ट कर सकते हैं। बुद्ध ने बुरे कर्मों का परित्याग कर आदेश दिया है। उनके मतानुसार तीन बुरे कर्म है – हिंसा, अस्तेय और इन्द्रिय योग। अतः बुद्ध ने अहिंसा, अस्तेय अर्थात दूसरे की सम्पत्ति को न चुराना और इन्द्रिय संयम की शिक्षा दी।

5. सम्यक् आजीविका : सम्यक् आजीविका से तात्पर्य है जीवन व्यतीत करने के लिए उचित एवं शुभ मार्ग का प्रयोग करना। धोख, लूट, रिश्वत, अत्याचार जैसे अशुभ मार्ग से आजीविका चलाना पाप है।

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 118

6. सम्यक् व्यायाम : सम्यक् व्यायाम में मन नियंत्रण की आवश्यकता है। इसके लिए अपने अंदर से पुराने बुरे विचारों को बाहर निकालना, नये बुरे विचार को मन में आने से रोकना, अच्छे भावों को मन में भरना और इन भावों को मन में सतत क्रियाशील रखना यही चार व्यायाम बुद्ध ने कहे हैं।

7. सम्यक् स्मृति : सम्यक् स्मृति का पालन करना अर्थात तलवार के धार पर चलना है। जिन विषयों का ज्ञान हो चुका है उसे सदैव ध्यान में रखना है। निर्वाण की आशा रखने वाले व्यक्ति ने शरीर को शरीर, मन को मन, और संवेदना को संवेदना समझाना आवश्यक है, इनमें से किसी के लिए भी अगर ऐसा सोचा कि यह मैं हूँ अथवा मेरा है। सर्वदा भ्रामक है। इन सब वस्तुओं को क्षणिक एवं दुःखमय समझना है। अगर ऐसा नहीं समझाा तो वस्तुओं में आसक्ति आ जाएगी और नष्ट होने पर दुःख होगा।

8. सम्यक् समाधि : प्रस्तुत मार्गों परचलने के बाद निर्वाण चाहने वाला व्यक्ति अपने चित्त स्थायी कर समाधि को अवस्था अपना सकता है। इसकी उन्होंने चार अवस्था मानी है। पहली अवस्था में बुद्ध के चार आर्य सत्यों को मनन चिन्तन करना है। दूसरी अवस्था में प्रथम अवस्था से संदेह दूर हो जाते हैं। अतः तर्क एवं वितर्क त्यागकर आनन्द एवं शान्ति की अनुभूति करना है। तीसरी अवस्था में आनन्द एवं शान्ति के भाव को त्यागकर शारीरिक आराम का ज्ञान विद्यमान करना है। शारीरिक आराम और शान्ति के भाव को त्याग कर चौथी अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इसमें मनुष्य को 'अर्हत' की संज्ञा प्राप्त होती है और सभी प्रकार के दुःखों का विरोध होकर निर्वाण प्राप्त होता है। अतः हम देखते है कि यह चार आर्य सत्य बौद्ध दर्शन के मूल केन्द्रबिन्दु है।। बौद्ध दर्शन के समस्त सिद्धान्त इन चार आर्य सत्य पर ही किसी न किसी रूप में दिखाई देते हैं।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त–

i) क्षणिकवाद – प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु कारणानुसार होती है। कारण के नष्ट होने पर वस्तु भी नष्ट होती है। अतः प्रत्येक वस्तु नाश्वान है। प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अनित्यवाद से अवतरित हुआ है इसके अनुसार संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें परिवर्तन न हो। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। चाहे वह जड़ हो या चेतन सब परिवर्तनशील है। गौतम बुद्ध ने अनित्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है – ''जो वृद्ध हो सकता है वह पूर्णतः वृद्ध

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

होकर ही रहेगा। जिसे रोगी होना है वह रोगी होकर ही रहेगा। जो मृत्यु के अधीन है वह अवश्य मरेगा। जो नाश्वान है उसका नाश अत्यावश्यक है।''[1]

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 121

बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अनित्यवाद के सिद्धान्त को उनके अनुयायियों ने क्षणिकवाद के रूप में रूपांतरित किया। क्षणिकवाद अनित्यवाद का ही विकसित रूप है। क्षणिकवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र होता है विश्व की प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र होता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु केवल अनित्य ही नहीं, अपितु क्षणभंगुर है। क्षणिकवाद के समर्थकों ने एक महत्वपूर्ण तर्क दिया है वह इस प्रकार है – अर्थ – क्रिया– कारित्व अर्थात किसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति। इस तर्क के अनुसार किसी वस्तु की सत्ता को तभी तक माना जा सकता है जब तक उसमें कार्य करने की शक्ति मौजूद हो जो असत्य है उसमें किसी कार्य का विकास सम्भव नहीं है। अतः कोई वस्तु कार्य उत्पन्न कर सकती है तब उसकी सत्ता है और यदि वह कार्य उत्पन्न नहीं कर सकती तो उसकी सत्ता नहीं है, एक वस्तु से एक समय पर एक ही कार्य सम्भव है अगर दूसरे समय में दूसरा कार्य उत्पन्न होता है तो यह सिद्ध होता है कि पहली वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र के लिए था। क्योंकि दूसरी वस्तु के निर्माण के साथ ही पहले वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। धम्मपद में कहा गया है ''जो नित्य तथा स्थायी मालूम पड़ता है वही भी नाश्वान है। जो महान् मालूम पड़ता है, उसका भी पतन है।''[1] क्षणिकवाद की व्याख्या करते समय अनेक प्रश्न सामने उपस्थित होते हैं। जैसे यह सिद्धान्त कार्य–कारण सम्बन्ध की व्याख्या करने में असमर्थ है, दूसरा अगर इस सिद्धान्त को मानते हैं तो–कर्म सिद्धान्त का खण्डन होता है और निर्वाण की विचारधारा भी प्रभावित होती है। तीसरा यह कि स्मृति और प्रत्यभिज्ञा की व्याख्या करना असम्भव है।

ii) अनात्मवाद – बुद्ध ने संसार के समस्त वस्तुओं को क्षणिक माना है। कोई भी वस्तु किन्हीं दो क्षणों में एक सी नहीं रहती। आत्मा भी अन्य वस्तुओं की तरह परिवर्तनशील है। जबकि भारत के अन्य दर्शनों ने आत्मा को नित्य माना है, स्थायी माना है। आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के उपरान्त एवं मृत्यु के पूर्व भी रहता है। अतः आत्मा पूर्नजन्म के विचारों को जीवित रखती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अगर आत्मा का अर्थ स्थायी तत्व में विश्वास करना है तो बुद्ध का मत पूर्णतः अनात्मवादी कहा जा सकता है। बुद्ध ने शास्वत आत्मा का इस प्रकार विरोध किया –''विश्व में न कोई आत्मा है और नही आत्मा की तरह कोई अन्य वस्तु। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के आधार–स्वरूप मन और मन की वेदनाएँ, वे सब आत्मा के समान किसी चीज से बिल्कुल शून्य हैं।''[2] बुद्ध ने आत्मा को अनित्य माना है। यह केवल अस्थायी शरी और मन का संकलन मात्र है। उनके अनुसार आत्मा केवल पाँच स्कन्धों की समष्टि का नाम है और यह पाँच स्कन्ध हैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 121
2. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 123

विज्ञान हैं। अतः स्कन्ध परिवर्तनशील है तो आत्मा भी परिवर्तनशील है। बुद्ध ने शास्वत आत्मा में विश्वास उसी प्रकार हास्यास्पद कहा है जिस प्रकार कल्पित सुन्दर नारी के प्रति अनुराग रखना हास्यास्पद है।

iii) अनीश्वरवाद – बुद्ध ने दार्शनिक विचारों में ईश्वर की सत्ता का विरोध किया है।
साधारणतः कहा जाता है कि ईश्वर की सृष्टि है और ईश्वर विश्व का महान स्त्रष्टा है। परन्तु बुद्ध के मतानुसार यह संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से संकलित होता है। यह विश्व परिवर्तनशील एवं अनित्य है। यह नश्वर एवं परिवर्तनशील जगत् का ईश्वर को मानना, जो अनित्य है, असंगत है। इसलिए बुद्ध ईश्वर को सृष्टि का स्त्रष्टा एवं नियामक मानना हास्यास्पद है। अगर हम ईश्वर को विश्व का स्त्रष्टा मानने लगें तो अनेक कठिनाइयाँ प्रस्तुत होंगी। जैसे ईश्वर विश्व का नियंता है तो फिर सृष्टि में विनाश एवं परिवर्तन का अभवा होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। संसार दुःख परिवर्तन, अशुभ के अधीन दिखाई देता है, क्योंकि प्रयोजन से करता है तो ईश्वर अपूर्ण दिखाई देता है, क्योंकि प्रयोजन किसी न किसी कमी को अभिव्यक्त करता है, और अगर सृष्टि का निर्माण किसी प्रयोजन से नहीं हुआ तो बुद्ध के अनुसार ईश्वर को पागल कह सकते हैं। बुद्ध के अनुसार समस्त संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम द्वारा चलता है। सृष्टि की समस्त वस्तुएँ कार्य–कारण की श्रृंखला में अबाधित है कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो अकारण हो। इस प्रकार विभिन्न रूप से बुद्ध ने अनीश्वरवाद को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने शिष्यों को ईश्वर पर निर्भर न रहने का आदेश नहीं दिया और कहा ''आत्म–दीपो भव।''[1]

बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय :

बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार भारत और अन्य देशों में हुआ तब सभी जगह इसकी कठोर आलोचना हुई और बौद्ध प्रचारकों से अनेक प्रश्न पूछे गए जिनके उत्तर प्रचारकों को भगवान बुद्ध से भी प्राप्त नहीं हुए। इसलिए प्रचारकों ने धर्म रक्षा और लोगों को अपने धर्म के प्रति आकृष्ट करने के लिए बुद्ध के मतों को परिवर्तित कर दार्शनिक सम्प्रदायों ने जन्म लिया। बौद्ध के विचारों के विपरीत बौद्ध विद्वानों ने दर्शन क्षेत्र में प्रवेश किया और परिणामस्वरूप तीस से अधिक शाखाएँ विकसित हुई। इनमें चार प्रमुख शाखाएँ भारत में मानी जाती हैं।

i) माध्यमिक शून्यवाद

ii) योगाचार – विज्ञानवाद

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

iii) सौत्रान्तिक – बाह्यनुमेयवाद
iv) वैभाषिक – बाह्य प्रत्यक्षवाद
1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 125

i) माध्यमिक–शून्यवाद : इस वाद के प्रर्वतक नागार्जुन को माना जाता है। शून्यवाद को साधारणः लोग समझाते हैं कि संसार शून्यतम है और सर्ववैनाशिकवाद भी कहा। परन्तु यह भ्रामक है। शून्यवाद का अर्थ है वर्णनातीत। इसे मध्यम मार्ग एवं सापेक्षवाद भी कहते हैं। इस मत के अनुसार संसार के विभिन्न विषयों को हम सत्य नहीं कह सकते। क्योंकि प्रत्येक वस्तु दूसरे पर निर्भर रहती है। विश्व के विषयों को हम सत्य भी नहीं कह सकते असत्य भी नहीं। इन्होंने प्रत्येक ईश्वर की सत्ता को नहीं माना परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से यह किसी परमार्थिक सत्ता को मानते हैं। नागार्जुन ने दो प्रकार के सत्य की चर्चा की अ. संवृत्ति सत्य – यह साधारण मनुष्यों के लिए है। ब. पारमार्थिक सत्य – यह निरपेक्ष रूप से सत्य है।

ii) योगाचार विज्ञानवाद : योगाचार विज्ञानवाद के श्रीगणेशकर्ता असंग और वसुबन्धु थे। इस मत के अनुसार विज्ञान सत्य है। शून्यवादियों ने बाह्य वस्तुओं तथा चित्त के अस्तित्व को नहीं माना है। परन्तु विज्ञानवादी बाह्य वस्तुओं की सत्ता का खण्डन करते हैं। अपितु चित्त की सत्ता में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार विज्ञान अर्थात मन की सत्ता को नहीं माना जाय तब सभी विचार असिद्ध हो जाते हैं। अतः विचार की सम्भावना के लिए चित्त को मानना आवश्यक है। ''हमारा समस्त बाह्य ज्ञान निस्सार और निस्स्वभाव है, वह भाषाजन्य है, मृगतृष्ण है, स्वप्नवत है। कोई चीज बाहरी नहीं है, सब कुछ मन (स्वचित्त) की काल्पनिक रचना है।''[1] विज्ञानवाद विज्ञान को एकमात्र सत्य मानते हैं। जो कुछ विज्ञान है। विज्ञान के दो भेद हैं।
अ. प्रवृत्ति विज्ञान, ब. आलय विज्ञान

iii) सौत्रान्तिक बाह्यानुमेयवाद : कुमार लाट द्वारा इसका विकास हुआ सौत्रान्तिक चित्त तथा बाह्य वस्तुओं दोनों के अस्तित्व को मानते हैं। विज्ञान वादियों ने बाह्य जगत के अस्तित्व का खण्डन किया है, परन्तु सौत्रान्तिक उनके विपरीत बाह्य जगत को चित्त के समान सत्य मानते हैं। सौत्रान्तिक–बाह्य जगत को चित्त के समान मानते हैं। सौत्रान्तिक–बाह्य–नुमेयवादियों ने विज्ञानवादियों के बाह्य सत्य के विरोध की आलोचना की है। इन्होंने ज्ञान के चार प्रकार हैं। आलम्बन, समनन्तर, अधिपति और सहकारी। प्रत्यया इनके अनुसार बाह्य ज्ञान अप्रत्य रूप से होता है।

iv) वैभाषिक बाह्य–प्रत्यक्षवाद : काश्मीर में बौद्ध सम्प्रदाय के विषय में विरोधात्मक मत विद्यमान थे। इसलिए बौद्ध धर्म के समर्थकों ने एक सभा का आयोजन कर 'अभिधर्म' पर विभाषा नामक एक टीका लिखी। वैभाषिक मत मूलतः विभाषा पर ही आधारित था इसलिए इस सम्प्रदाय का नाम वैभाषिक पड़ा। वैभाषिक चित्त और जड़ दोनों की सत्ता को मानते हैं। ये सभी वस्तुओं के अस्तित्व को मानते हैं। इनके अनुसार सभी वस्तुओं का अस्तित्व भूत, वर्तमान और भविष्य काल में होता है। धर्म शब्द का प्रयोग वैभाषिक मत में अधिक
1. एस.एन. दासगुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ.सं. 143
हुआ। इन्होंने सम्पूर्ण विश्व को धर्मों का संघात माना है धर्म चार हैं और वह हैं– पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि। इस प्रकार भारत में बौद्ध दर्शन के चार मुख्य सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। यह चारों सम्प्रदाय वैचारिक स्तर पर विरोध है। इन्होंने उन मान्यताओं को प्रतिस्थापित किया जो भगवान बुद्ध को कतई मान्य नहीं थी।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय :
अन्य धर्मों की तरह बौद्ध धर्म का विभाजन भी सम्प्रदायों में हुआ है। ऐसे सम्प्रदाय मूलतः दो हैं। जिनमें 'हीनयान' तथा 'महायान' हैं। 'हीनयान' बौद्ध धर्म का प्राचीनतम रूप रहा है। तो 'महायान' उसका विकसित रूप रहा है।
हीनयान – हीनयान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। पाली साहित्य इस धर्म का प्रमुख आधार रहा है, जिसमें बुद्ध की शिक्षाएँ संग्रहित हैं। यह सम्प्रदाय प्राचीन बौद्ध दर्शन की परम्परा को मानता है। इसी कारण इसे प्राचीन एवं मौलिक धर्म माना गया है। हीनयान के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य अर्हत होना या निर्वाण प्राप्त करना है। ईश्वर का स्थान हीनयान सम्प्रदाय में 'कम्म' तथा 'धम्म' को दिया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार शरीर, मन तथा निवास स्थान को अपनाता है। संसार का नियामक हीनयान के अनुसार 'धम्म' है। बौद्ध धर्म के प्रत्येक अनुयायी ने ''बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।''[1] का व्रत लेना परमआवश्यक है। इस प्रकार प्रमुखता से बुद्ध धम्म और संघ की तीन बातों को महत्वपूर्ण स्थान हीनयान सम्प्रदाय के अंतर्गत दिया गया है। निर्वाण को अभाव रूप माना गया है। हीनयान सम्प्रदाय में स्वावलम्बन पर अधिक जोर दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य अपने प्रयत्नों के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। निर्वाण प्राप्त करने के लिए मनुष्य को बुद्ध के चार आर्य सत्यों का मनन एवं चिन्तन करना आवश्यक है। हीनयान को कठिन आदेश के कारण 'कठिनयान' भी कहा गया है। यही कारण है कि हीनयान के अनुयायी अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। हीनयान सम्प्रदाय का यह आदर्श संकुति है क्योंकि इसमें लोक–कल्याण की भावना का निषेध हुआ है। हीनयान में सन्यास को प्रश्रय दिया गया है। 'विशुद्ध मार्ग' में कहा गया है कि ''जो व्यक्ति निर्वाण को अपनाना चाहता है उसे श्मशन में जाकर शरीर और जगत की अनित्यता की शिक्षा ग्रहण

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

करनी चाहिए।''[2] हीनयान अपने चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय सुख का दमन करते हैं तथा एकान्त में जीवन व्यतीत करते हैं। सामाजिक जीवन का भी

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 137
2. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 137

हीनयान सम्प्रदाय में खण्डन हुआ है। कहा गया है कि सामाजिक जीवन को व्यतीत करने से आसक्ति की भावना का उदय होता है, जिसके फलस्वरूप दुःख का आविर्भाव होता है। हीनयान सम्प्रदाय में बुद्ध को महात्मा के रूप में माना गया है। वे साधारण मनुष्य से इस अर्थ में उच्च थे कि उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। बुद्ध उपदेशक थे। हीनयान में स्वावलम्बन और सन्यास के आदर्श को माना गया है। वे आदर्श इतने कठोर हैं कि उनका पालन करना सबके लिए संभव नहीं हुआ। इसीलिए महायान के समर्थकों ने 'हीनयान' को 'छोटी गाड़ी' अथवा 'छोटा पथ' कहा है।

महायान – हीनयान धर्म की संकीर्णता एवं अव्यवहारकित की महायान सम्प्रदाय रूप में सामने उभरकर आया। बौद्ध धर्म के कुछ अनुयायियों ने हीनयान सम्प्रदाय के विपरीत एक दूसरे सम्प्रदाय को जन्म दिया जो जनसाधारण के मस्तिष्क ओर ह्रदय को संतुष्ट कर सके। यह कहना कठिन है कि महायान शाखा का प्रारम्भ कब हुआ लेकिन यह अनुमान किया जाता है कि हीनयान के बाद ही यह धारा शुरू हुई। महायान सम्प्रदाय को 'सहजयान' भी कहा जाता है। महायान धर्म की सरलता एवं व्यावहारिकता ही इसे विश्व–धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर सकी। महायान सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता बोधिसत्व की कल्पना रही है। महायान में अपनी मुक्ति की अपेक्षा संसार के समस्त जीवों की मुक्ति पर जोर दिया गया है। महायानी संसार के समस्त जीवों की मुक्ति पर जोर दिया गया है। महायानी संसार के समस्त प्राणियों के समग्र दुःखों का नाश करा उन्हें निर्वाण प्राप्त करा देना अपने जीवन का उद्देश्य मानता है। महायान के मतानुसार बोधिसत्व में करूणा समावेश रहता है। बोधिसत्व का अर्थ है बोधि अर्थात ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति परंतु महायान में बोधिसत्व का अर्थ लिया जाता है जो व्यक्ति– लोक कल्याण में संलग्न रहता है। महायान में बुद्ध को ईश्वर के रूप में माना गया है इसलिए कहा गया है– "The God of Mahayana is The God of Love and lays a great stress on devotion".[1]

समस्त प्राणी प्रेम भक्ति और कर्म के द्वारा ईश्वर की करूणा का पात्र हो सकता है। आगे चलकर महायान में बुद्ध को परमार्थिक सत्य का एक अवतार मान लिया गया। परमतत्व को महायान में वर्णनीय माना गया है। इस रूप में बुद्ध को 'अमिताभ' बुद्ध कहा जाता है तथा उनके दया की अपेक्षा साधारण मनुष्य के जीवन का आवश्यक अंग होता है। महायान में आत्मा का अस्तित्व माना गया है। महायान का कहना है कि आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाए तो मुक्ति कैसे मिलेगी? मुक्ति की सार्थकता के लिए आत्मा में विश्वास आवश्यक है। महायान में वैयक्तिक आत्मा को मिथ्या या हीन आत्मा कहा गया है।

1. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ.सं. 139

महायान के अनुसार सभी व्यक्तियों में एक ही महात्मा विद्यमान होता है। महायान में संसार से पलायन की प्रवृत्ति की कटु आलोचना हुई है। यदि मनुष्य संसार का परमार्थिक रूप समझे तो वैसी हालत में संसार में रहकर ही वह निर्वाण प्राप्त कर सकता है। महायान में कर्म–विचार में भी कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास हुआ है। कर्म–सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का फल पाता है। लोक–कल्याण की भावना से प्रभावित होकर बोधिसत्व अपने पुण्यकर्मों द्वारा दुसरों कों दुःख से मुक्ति दिलाते हैं तथा पापमय कर्मों का स्वयं भोग करते हैं। इस प्रकार कर्मों के आदान–प्रदान को जिसे 'परिवर्तन' कहा जाता है यही महायान में माना गया। महायान में निर्वाण के भावात्मक मत पर बल दिया गया है। निर्वाण प्राप्त करने के बाद व्यक्ति के समस्त दुःखों का अन्त हो हाता है। महायान उदार एवं प्रगतिशील है। महायान उदार एवं प्रगतिशील होने के कारण अनेक विचारों को आश्रय दिया जिनके फलस्वरूप महायान में अनेकानेक नवीन विचार मिल गये। उसी का फल है कि महायान आज भी जीवित है। हीनयान अधिक कट्टरता के कारण संकुचित और महायान अधिक उदारता के कारण विकृत होता चला गया। महायान का नाम कालांतर से मन्त्रयान पड़ा। मन्त्रयान से वज्रयान निकला और उसमें चौरासी सिद्ध दीक्षित हुए। ओग चलकर यही सिद्धों का परिष्कृत रूप में नाथ सम्प्रदाय सामने आया।

भारत में बौद्ध दर्शन असफल क्यों?

बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध की विचारधाराओं को लेकर चला। एक समय ऐसा था जब संसार में बौद्ध धर्म अपने पैर फैला चुका था। समस्त संसार बौद्ध धर्म की विचारधारा से प्रभावित हुआ और बौद्ध धर्म का विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ परन्तु महात्मा बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात बौद्ध धर्म बुद्ध की विचारधाराओं से हटने लगा। आगे चलकर यह अनेक छोटे–छोटे सम्प्रदायों में विभक्त हुआ। जैसे हीनयान, महायान, वज्रयान, मंत्रयान। हीनयान अधिक कट्टरता के कारण संकुचित हुआ तो महायान अधिक उदारता के कारण विकृत। बौद्ध धर्म हिन्दू वैदिक धर्म के जिस कर्मकाण्ड के विरोध में खड़ा हुआ था आज वही कर्मकाण्ड बौद्ध में किये जाने लगा। तंत्र–मंत्र और चमत्कार प्रदर्शन के बल पर अज्ञानी जनता को आकर्षित करना, सिद्धि प्राप्ति के लिए गुप्त मंत्रों का जाप यही इनकी साधना बन गई। ''इन सम्प्रदायों में अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और उनका प्रदर्शन ही सिद्ध समझा गया। सिद्धि लाभ के लिए, गुप्त मंत्रों का जाप, आधर विहीन गुप्त क्रियाओं – विशेषकर निम्न वर्ग की नारियों से भोग आदि को अपनाया गया। इन की योगिनियों के द्वारा मनुष्य की कामुकता को खूब बढ़ावा मिला चमत्कार प्रदर्शनार्थ निरीह जनता को ठगने की प्रवृत्ति बढ़ी। नैतिक स्तर पर गिरा और धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होने लगा।''1 भगवान बुद्ध ने कभी आत्मा को नहीं मान परन्तु बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों ने आत्मा तत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया। ईश्वर या परमात्मा के अस्तित्व को भी बुद्ध ने नकारा था परन्तु कुछ

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org

बौद्ध दर्शन सम्प्रदाय भगवान को किसी परमार्थिक सत्ता के रूप में मान्यता मिली। कर्मकाण्ड और मूर्तिपूजा का विरोध होने के बाद भी बौद्ध सम्प्रदायों में इसका प्रचलन अधिक बढ़ा। आगे चलकर शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद का प्रचार–प्रसार किया। बौद्ध धर्म के विरोध में शंकर ने अद्वैतवाद का उपदेश इस प्रकार किया कि एक बड़े सम्प्रदय के रूप में इसकी प्रतिष्ठा हुई। बौद्ध धर्म की आचरण पद्धति पर जनता का विश्वास डिग गया और शंकराचार्य के प्रहारों से बौद्ध धर्म की जड़ें तक हिल गई। परिणामस्वरूप जो बौद्ध धर्म भगवान बुद्ध की महान विचारधारा को लेकर चला था वह अपने घर से अर्थात भारत से अपना अस्तित्व खोने लगा। शायद यही सब कारण केन्द्र में रहे हैं भारत में बौद्ध धर्म की असफलता के पीछे।

निष्कर्ष

भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म अपने विराट रूप में भारत और विश्व में फैला। बुद्ध ने अपने ज्ञान से समस्त संसार के दुःखी जनता को दुःख से छुटकारा पाने का रास्ता बताया। जनकल्याण ही उनका परम उद्देश्य था। परन्तु उनके दर्शन में कई ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए जिनके उत्तर वे स्वयं नहीं दे पाए। शायद यहाँ उन्होंने मौन रहना ही उचित समझाा आगे चलकर बौद्ध धर्म दर्शन के विवादों में घिरा रहा। परन्तु बौद्ध दर्शन की विचारधारा, आध्यात्मिक पक्ष बड़ा ही उच्चकोटि का है।

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 36

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	भारतीय दर्शन	–	आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा मंदिर, वाराणसी
2.	भारतीय दर्शन की रूपरेखा	–	प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगाली रोड, दिल्ली – 110 007
3.	भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–1	–	एस. एन. दासगुप्त राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	–	डॉ. शिवा कुमार शर्मा अशोक प्रकाशन, 2615 नई सड़क, दिल्ली – 6

Copyright © 2017 Published by kaav publications. All rights reserved www.kaavpublications.org